

## मुस्लिम आलिमों की सर्वसहमति (इज्माअ)

दीन का स्रोत पैगम्बर मुहम्मद सल्ल. की हस्ती है। आपके ही माध्यम से हमें कुरआन मिला है और आप की सुन्नत ही हमारे लिए 'उसवा' (व्यवहारिक नमूना) है। पैगम्बर सल्ल. से यह दीन (कुरआन व सुन्नत) आपके साथियों (सहाबियों) की सर्वसम्मति और बोल व अमल की लगातार निरन्तरता ("तवातुर") से बाद वालों को मिला और दो रूपों में हम को मिला एक कुरआन, दूसरे सुन्नत। यही दीन का मूल स्रोत हैं। इनके अलावा दीन के हुक्म या खुदा की मंशा को समझने के लिए कोई तीसरी चीज़ है तो वह 'इज्तेहाद' है जिसमें दीन का गहरा इल्म रखने वाले आलिम उन मामलों में शरीअत का फ़ैसला मालूम करने की कोशिश करते हैं जो कुरआन या सुन्नत में सीधे सीधे नहीं मिलते। इसके अलावा जो मामले लोगों की अक़ल, राय और समझ पर छोड़ दिए गए हैं उनमें अक़ल व इल्म का इस्तेमाल भी इसके दायरे में आता है जिसे "क्रियास" भी कहते हैं। कुरआन में इसके लिए "इसतंबात" का शब्द इस्तेमाल हुआ है। इससे जो चीज़ अस्तित्व में आती है उसे 'फ़िक्ह' कहा जाता है। इसकी शुरूआत रसूल सल्ल. के युग से ही हो गयी थी। "अखबार-ए-आहाद" (ऐसी हदीसों जिन्हें गिनती के कुछ लोगों ने ही बयान किया हो) का एक बड़ा भण्डार इसी का बयान है। लेकिन जब सहाबियों के बाद फ़क़ीहों का युग शुरू हुआ तो इसके साथ एक चौथी चीज़ भी जुड़ गयी, जिसे "इज्माअ" कहा गया। यानि किसी नतीजे या फ़ैसले को मानने में तमाम विश्वसनीय आलिमों का एक मत होना। इस युग से अब तक आम तौर से यह माना जाता है कि यह 'इज्माअ' भी शरीअत का एक हिस्सा है।

दीन के स्रोत में यह इज़ाफ़ा मेरे नज़दीक बिदअत है। मेरा मानना यह है कि कुरआन व सुन्नत में इसके लिए कोई आधार नहीं मिलता। उस समय के इज्माअ को हमेशा के लिए आख़री इज्माअ मान लेने से एक समस्या यह पैदा हुई कि इस्लामी शरीअत की शाश्वतता (निरन्तर प्रासंगिकता बने रहने की योग्यता) प्रभावित हुई और आधुनिक युग से उसका सम्बंध साबित करना कठिन हो गया। भारत के रहने वाले मौलाना वहीदुद्दीन ख़ां लिखते हैं:

"आम तौर से फ़क़ीहों ने इज्माअ को शरीअत का एक मुस्तक़िल मसदर (स्थाई स्रोत) ठहाराया है, मगर यह निश्चित रूप से एक बे बुनियाद बात है। शरीअत का मुस्तक़िल मसदर केवल कोई "नस-ए-क़तई" (कुरआन या सुन्नत की कोई निश्चित बात) हो सकती है। 'नस-ए-क़तई' के न होने पर किसी चीज़ को शरीअत का मुस्तक़िल मसदर मानना निश्चित रूप से एक बे बुनियाद बात है। 'इज्माअ' का बेशक एक महत्व है, लेकिन वह महत्व केवल यह है कि किसी ख़ास समय किसी ख़ास समस्या का एक व्यवहारिक समाधान इससे होता है। यह समाधान एक सामयिक समाधान होता है, न कि शरीअत का अबदी मसदर अर्थात स्थाई स्रोत" (अलरिसाला, 7/2011)

फ़क़ीह लोग जिन तर्कों से इज्माअ को हुज्जत (फ़ैसला करने का आधार) बताते हैं उनकी हक़ीक़त अगर कोई समझना चाहे तो उसे इमाम शोकानी की "इरशादुल ख़ोल" देखना चाहिए। उस पर यह बात खुल जाएगी कि यह बात कितनी

बेमतलब और अप्रासंगिक है। अलबत्ता कुरान की एक आयत और एक हदीस ऐसी है जिसके आधार पर कुछ लोगों को यह बात मानने में संकोच हो सकता है। उसकी हकीकत हम यहां स्पष्ट करते हैं।

अल्लाह ने फ़रमाया है:

“और जो हिदायत का रास्ता अपने उपर पूरी तरह खुल जाने के बाद रसूल का विरोध करेंगे और उन लोगों के रास्ते को छोड़ कर कोई और रास्ता अपनाएंगे जो (तुम पर) सच्चे दिल से ईमान लाए हैं, उन्हें हम उसी रास्ते पर डाल देंगे जिस पर वो खुद गए हैं और जहन्नम में झोंकेंगे। वह बहुत ही बुरा ठिकाना है।” (अलनिसा: 4:115)

फ़कीहों का तर्क यह है कि ईमान वालों का रास्ता छोड़ कर कोई दूसरा रास्ता अपनाया जाए तो आयत में उस पर जहन्नम की धमकी है। इसका साफ़ अर्थ यह है कि उनके रास्ते की पैरवी हर आदमी पर लाज़िम है। लिहाज़ा मुसलमान अगर किसी बात या दृष्टिकोण पर सहमत हो जाएं तो उसका विरोध नहीं किया जा सकता। हर ईमान वाले पर ज़रूरी है कि उनकी सर्वसम्मति का पालन करे।

मेरे नज़दीक यह तर्क निराधार है। इस बात को समझने के लिए आयत को उसके परिप्रेक्ष्य में रख कर देखें। पीछे जिन मुनाफ़िकों की कानाफूसियों से परदा उठाया गया है, उन्हीं के सम्बंध में कहा गया है कि पैग़म्बर के विरोध में जो लोग अपनी अलग पार्टी खड़ी करना चाहते हैं और इस तरह ईमान के बजाए कुफ़्र (इंकार) व मुनाफ़िकत (दोगलापन) का तरीका अपना रहे हैं वो जहन्नम में झोंक दिए जाएंगे। इशारा उन लोगों की तरफ़ है जो मुसलमानों के बीच उनकी सफ़ाई देने की कोशिश कर रहे थे। उन्हें ख़बरदार किया है कि जिनकी वकालत कर रहे हो उनका यह विरोधपूर्ण तरीका उन्हें सीधा जहन्नम में ले जाएगा, इसलिए कि यह ईमान वालों का तरीका नहीं है और जो लोग हिदायत का रस्ता पूरी तरह स्पष्ट हो जाने के बाद कुफ़्र और मुनाफ़िकत का रस्ता अपनाएं उनका ठिकाना जहन्नम ही हो सकता है। आयत में इसी कुफ़्र और मुनाफ़िकत के लिए “ईमान वालों के रास्ते के खिलाफ़” शब्द आए हैं इनमें ‘ईमान वालों’ से अभिप्राय अल्लाह के रसूल के सहाबी हैं जिन्होंने हक़ (सत्य) को पा लिया तो उसके बाद फिर कभी पैग़म्बर से ग़दारी, विरोध और विचलित होने का रवैया नहीं अपनाया, बल्कि पूरी निष्ठा के साथ आपका अनुपालन किया और जो निर्देश दिया गया उसके सामने खुद को झुकाते रहे। ईमान व इख़लास (सच्ची निष्ठा), अनुपालन व अनुसरण और आत्मसमर्पण का यही रवैया है जिसे ‘ईमान वालों का रास्ता’ कहा गया है। इसे छोड़ कर जो तरीका भी अपनाया जाए वह “ग़ैर सबीलिल मोमिनीन” यानी ईमान वालों के रास्ते के खिलाफ़ है और इसी को अपनाने वाले लोग हैं जिनको जहन्नम की धमकी दी गयी है। इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं है ईमान वालों की राय और इज्तेहाद से मतभेद नहीं किया जा सकता या वो सर्वसम्मति कोई दृष्टिकोण अपनाएं और कुरआन व सुन्नत की रोशनी में उस पर टीका टिप्पणी की जाए तो आदमी जहन्नम का हक़दार बन जाता है। वास्तव में यह मुद्दा इस आयत में है ही नहीं। इसमें जो बात कही गयी है वह केवल यह है कि हिदायत का रस्ता पूरी तरह स्पष्ट हो जाने के बाद अगर कोई व्यक्ति अल्लाह के भेजे हुए रसूल के विरोध में और उनके मुक़ाबले पर अपनी एक अलग पार्टी खड़ी करने का दुस्साहस करता है तो यह सीधे सीधे कुफ़्र है जिसके साथ ईमान का कोई मतलब नहीं है। इस तरह के लोगों को अल्लाह उसी रस्ते पर डाल देते हैं जो वो अपने

लिए चुनते हैं। इसलिए फ़रमाया कि यह रस्ता अगर किसी ने अपनाया है तो उसे फिर जहन्नम का ही इंतज़ार करना चाहिए।

यही मामला हदीस का भी है। पैग़म्बर सल्ल. के हवाले से बयान किया गया है कि आपने फ़रमाया: “अल्लाह मेरी उम्मत को किसी गुमराही पर जमा नहीं करेंगे” (तिरमिज़ी 2176)। यह रिवायत हालांकि सुबूत के लिहाज़ से पहले दर्जे की नहीं है और बुखारी, मुस्लिम व मौता इमाम मालिक जैसी हदीस के प्रमाणित संग्रहों में नहीं है, लेकिन मान लीजिए कि यह हदीस सही है और अल्लाह के रसूल सल्ल. ने ऐसा ज़रूर फ़रमाया है, लेकिन इसका मतलब क्या यह है कि उम्मत के लोगों से कोई ख़ता भी नहीं हो सकती? ख़ता और गुमराही में बहुत फ़र्क है और हदीस में जो कुछ फ़रमाया गया उसका सम्बंध गुमराही से है ख़ता से नहीं है। यह बिल्कुल नामूमकिन है कि पूरी उम्मत किसी गुमराही एक मत हो जाए, इसकी वजह यह है कि दीन के मामले में हिदायत और गुमराही का फ़र्क पूरी तरह खोल दिया गया है (“हिदायत गुमराही से अलग कर दी गयी है” 2:256)। इसलिए यह कभी नहीं हो सकता कि उम्मत के सभी आलिम, मुज्ताहिद और बुद्धिजीवी किसी शिर्क को शिर्क समझते हुए उस पर जमा हो जाएं या अल्लाह के रसूल के रसूल होने का इंकार कर दें या आखिरत में जवाबदेही के इंकारी हो जाएं या नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात और कुर्बानी जैसे कर्तव्यों से मुंह मोड़ लें। इन्हें छोड़ने पर ‘इज्माअ’ नहीं हो सकता। इसके विपरीत जो चीज़ें ग़ौर व चिंतन करने वाली हैं और इज्तेहाद करने वाली हैं उनके समझने में ग़लती हो सकती है और मेरे विचार में उम्मत के सब लोग उस ग़लती पर जमा हो सकते हैं। अक़ल या रिवायत के आधार पर इसे नामूमकिन नहीं कहा जा सकता। इसलिए यह हदीस अगर सही भी है तो भी इसके शब्दों से साफ़ है कि अल्लाह के पैग़म्बर सल्ल. का यह फ़रमान गुमराही पर सहमत हो जाने से सम्बंधित है और गुमराही के बारे में यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि मुसमलान इस पर कभी एकमत नहीं होंगे। चिंतन और बोध की किसी ग़लती पर एकमत होने से इसका सम्बंध नहीं है।